ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ

विवेक-जागृति



लेखक :

पीयूषवाणी ब्रह्मचारी श्री सारंगजी महाराज

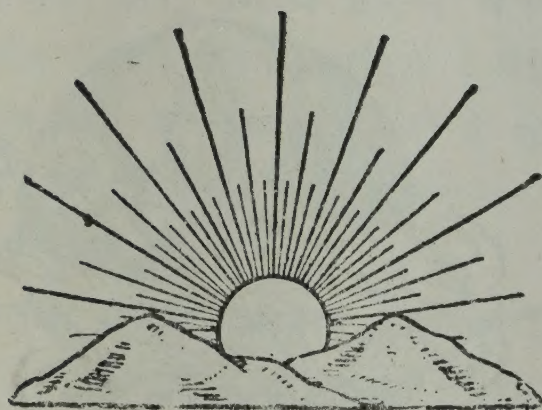
स्थान :-सारंग—सेवा-आश्रम (उजेली)

पोस्ट :-उत्तरकाशी (हिमालय)

वाया :-टेहरी (यू. पी.)

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ

विवेक-जागृति



लेखक :

पीयूषवाणी ब्रह्मचारी श्री सारंगजी महाराज

स्थान :-सारंग–सेवा-आश्रम (उजेली)

पोस्ट :-उत्तरकाशी (हिमालय)

वाया :-टेहरी (यू. पी.)

卐

जनवरी ❀ १९७५

卐 ध्यान-दीजिये 卐

१. सूची-पत्र पुस्तक के पीछे की ओर ४७ पेज पर छपा है।



२. कागज व छपाई आदि सभी कुछ पहले से महंगे हैं अतः इच्छा होते हुए भी पुस्तक में अधिक विषय नहीं छप सके हैं।

सारंग

२. सत्संग करने का तरीका—अनाज खरीदने हम अनाज मंडी में जाते हैं तथा कपड़ा खरीदने कपड़ा बाजार में जाते हैं। उस प्रकार सत्संग करने के लिये भी हमें ज्ञानवान् पुरुषों के पास ही जाना चाहिये। उनके पास जाकर उनकी सेवा भी करनी चाहिये। सेवा द्वारा उनको प्रसन्न करके, नम्रता पूर्वक अपने मन की बात उनको पूछनी चाहिये। जैसे—१. अर्जुन ने भगवान श्री कृष्ण को, २. भरद्वाज जी ने याज्ञवल्क्य जी को ३. पार्वती जी ने शिवजी को ४. नचिकेता ने यमराज को आध्यात्मिक तत्व पूछा था।

गाय को जितना अच्छा आहार मिलेगा उतना ही अधिक वह दूध देगी। इसी प्रकार जितनी अधिक श्रद्धा से सेवा की जायेगी उतना ही अधिक लाभ सेवा करने वाले को होगा। जो लोग संतों के वचनों में श्रद्धा नहीं करते तथा जिनके मन में सेवाभाव नहीं है। जो केवल समय व्यतीत करने या मनोरंजन करने के लिये ही संत महात्माओं के पास जाया करते हैं। जीवन या सत्संग करने से भी कुछ लाभ नहीं होता जैसे—चन्दन के वन में रहने पर भी बांस चन्दन नहीं होता।

अहंकार का त्याग करके, अपने कल्याण की इच्छा से संतों के पास जाना, श्रद्धा सहित उनको प्रणाम करना, यथा शक्ति सेवा करना, नम्रतापूर्वक प्रश्न करना, संतों की बातें एकाग्र चित्त से सुनना, फिर उसका मनन करना तथा संत-महात्मा बतावें उसी प्रकार साधन-भजन भी करना चाहिये। सत्संग करने का सही तरीका यही है। सुनी हुई बात के अनुसार आचरण करने से ही लाभ होगा।

३. **सत्संग से अनेक लाभ होते हैं**—सत्संग से जितने लाभ होते हैं। उनकी गणना तो कोई भी नहीं कर सकता । फिर भी सत्संग से पहला लाभ तो यह होता है कि १. **पुण्य बढ़ते हैं** । रामायण में लिखा है कि—**मुद मंगलमय संत समाजू** । दूसरा लाभ होता है २. **अन्तःकरण की शुद्धि** । कपड़े पर साबुन लगाने से कपड़ा साफ होता है उसी प्रकार ज्ञान की बातें सुनने से हृदय का अज्ञान दूर होता है । तीसरा लाभ होता है—**विवेक की प्राप्ति** । दही को मन्थन करने से मक्खन निकलता है । इसी प्रकार गुरु व शिष्य जब परस्पर आत्मा-अनात्मा का विचार करते हैं तब विवेक की प्राप्ति होती है ।

रामायण में लिखा है कि—भगवान की कृपा से ही सत्संग की प्राप्ती होती है और सत्संग द्वारा ही विवेक की प्राप्ती होती है । विवेक द्वारा मनुष्य दोषों का त्याग करके गुणों को ग्रहण कर सकता है ।

बिनु सत्संग विवेक न होई । राम कृपा बिनु सुलभ न सोई ।।
अस विवेक जब देहि विधाता । तब तजि दोष गुणहि मन राता ।।

विवेक हीन मनुष्य ही संसार में दुःखी रहता है । विवेकवान तो प्रत्येक परिस्थिति में शांत-चित्त रहता है । साधकों को सदा ये तीन बातें याद रखनी चाहिये—

१. **निष्काम भाव से कर्म करना—कर्म का विवेक है ।**

२. **ईश्वर पर विश्वास करना—भक्ति का विवेक है ।**

३. **अपने को देह से अलग मानना—ज्ञान का विवेक है ।**

卐 अविवेक से हानि 卐

शिष्य ने कहा—गुरुजी ! आज कल लोग कहा करते हैं कि सत्संग द्वारा हमने विवेक अर्थात् आत्मज्ञान प्राप्त नहीं किया तो हमारा क्या नुकसान है ? अतः कृपा करके ये समझाइये कि आत्मज्ञान के बिना मनुष्य की क्या हानि होती है ?

गुरुजी ने कहा—पुत्र ? प्रकाश के बिना मनुष्य की जो हानि होती है वही हानि अविवेकी की होती है । जहां प्रकाश नहीं होगा वहां अन्धकार अवश्य रहेगा । इसी प्रकार जहां ज्ञान नहीं होगा वहां अज्ञान अवश्य रहेगा । मनुष्य के दुःख का कारण अज्ञान ही है ।

रामायण में लिखा है कि—रस्सी का ज्ञान हुए बिना मनुष्य कल्पित सर्प से डरता रहता है । इसी प्रकार आत्मा का ज्ञान न होने से अज्ञानी लोग देह के कल्पित सम्बन्ध को सत्य मानकर देह के दुःख-सुख से अपने आपको दुःखी सुखी समझा करते हैं । रस्सी का ज्ञान होते ही मिथ्या सर्प से होने वाला भय तुरन्त दूर हो जाता है उसी प्रकार आत्मा का ज्ञान होते ही जगत का मिथ्या भ्रम भी नष्ट हो जाता है ।

झूठेउ सत्य जाहि बिनु जाने । जिमी भुजंग बिनु रजु पहिचाने ॥
जेहि जाने जग जाइ हेराई । जागे जथा सपन भ्रम जाई ॥

अज्ञानी पुरुष समझते हैं कि धन से ही सुख मिलता है । पुत्र से ही सद-गति मिलती है । स्त्री-सुख से बढ़कर कोई सुख नहीं है । इसी प्रकार अज्ञानी स्त्री समझती है कि जिसके पास अधिक स्वर्ण व कीमती वस्त्र आदि विषय सुख हैं वही संसार में सुखी है । सत्संग द्वारा प्राप्त विवेक से ही ये भूल सुधरती है । विवेक बताता है कि—**विषयों में सुख मानना ही भूल हैं ।**

एक बार वशिष्ठ मुनि राम जी को आत्मज्ञान का उपदेश दे रहे थे। उपदेश देते समय अचानक वशिष्ट जी को हंसी आ गई। रामजी ने कहा—गुरुजी ! हंसी का तो इस समय कोई भी प्रसंग नहीं है। फिर आप किस कारण से हसे ?

वशिष्ठ जी ने कहा—हे राम ! तुमको उपदेश देते समय अचानक थोड़े समय के लिये मेरा ध्यान उस केंचुए (कीचड़ में रहने वाला पतला व लंबा कीड़ा) की ओर चला गया। योग शक्ति द्वारा मैंने उसके पिछले संस्कारों को देखा तो मुझे ज्ञात हुआ कि—

अपने पिछले पुण्यों के फल स्वरूप ये केंचुआ १४ बार इन्द्र बन चुका है। पुण्यों के समाप्त होने पर स्वर्ग से इसका पतन हुवा और पापों के फल स्वरूप अब केंचुआ बना है। इसी प्रसंग को लेकर मुझे हंसी आ गई थी।

इस उदाहरण से तुमको ये बात सदा याद रखनी चाहिये कि—जब तक आत्मा का ज्ञान नहीं होगा तब तक जन्म-मरण का चक्कर भी समाप्त नहीं होगा। श्रुति कहती है–**नैव ज्ञानेन बिना मुक्ति। अर्थात ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं होती।**

माता के पेट में बालक को गर्भावस्था में बड़ा कष्ट होता है। जन्म के समय भी बहुत वेदना होती है। इसी प्रकार मृत्यु के समय भी १००० बिच्छुओं के काटने के समान भयंकर पीड़ा होती है।

जन्म-मरण के दुःखों से सदा के लिये छूटकारा पाने के लिये तथा शाश्वत शांति प्राप्त करने के लिये सत्संग द्वारा विवेक प्राप्त करना चाहिये।

शिष्य ने कहा—गुरुजी ! ये बात तो मैं समझ गया कि अज्ञानी मनुष्य अंधे के समान है । अज्ञान अन्धकार के समान दुख:दायी है । अब कृपा करके ये बताइये कि अज्ञान कितनी तरह का होता है और वह कैसे दु:ख देता है ?

गुरुजी ने कहा—वत्स ! वेदांत शास्त्र के अनुसार अज्ञान चार प्रकार का है—१. अनित्य को नित्य समझना । २. अपवित्र को पवित्र समझना ३. दु:ख रूप को सुख रूप समझना । ४. अनात्मा को आत्मा समझना । इन चारों प्रकार के अज्ञान के सम्बन्ध में मैं तुझे अच्छी तरह से समझाता हूं ।

१. **अनित्य को नित्य समझना**—अपना शरीर और दूसरों का शरीर तथा जगत के सम्पूर्ण पदार्थ नाशवान हैं । इनको स्थाई समझकर इनसे स्नेह करना ही पहला अज्ञान है । स्त्री समझती है कि मेरा पति सदा रहेगा और उसके द्वारा मुझे सदा ही नाना प्रकार के विषय सुख मिलते रहेंगे परन्तु अचानक पति मर जाता है और स्त्री दु:खी हो जाती है ।

२. **अपवित्र को पवित्र समझना**—ये शरीर हड्डी और मांस का पुतला है । इसमें मल और मूत्र भरा है । ऐसे अपवित्र शरीर को पवित्र मानकर दिन रात इसको वस्त्र व आभूषणों से सजाना व फैशन करना ही दूसरा अज्ञान है ।

३. **दु:खरूप को सुखरूप समझना**—शराब, सिगरेट, जूवा, वेश्या, जिव्हा का स्वाद व सिनेमा आदि व्यसन परिणाम में दु:ख रूप ही हैं परन्तु लोग इनको सुखरूप समझकर अपनाते हैं । ये ही तीसरा अज्ञान है ।

४. **अनात्मा को आत्मा मानना**—वास्तव में कोई भी अपना नहीं है । मोह से ही मिथ्या सम्बन्ध सत्य से प्रतीत होते हैं । यही चौथा अज्ञान है ।

आज से ५० वर्ष पहले ऋषीकेश में मंगल नाथ जी नाम के एक बहुत ही ज्ञानवान महात्मा रहते थे। इनके पास सत्संग करने के लिये वैशाख के महिने में पंजाब के प्रसिद्ध नगर लाहौर से राय बहादुर सेठ रुड़ाराम जी हर साल आया करते थे।

जब वे मंगलनाथ जी को प्रणाम करते तब मंगलनाथ जी पूछते कि- भाई कैसे हो ? तब रुड़ाराम जी कहते कि— महाराज ! मैं तो बड़ा दुखी हूं। फिर महात्मा जी पूछते कि— तुम्हें क्या दुःख है ? तब रायबहादुर कहते कि—फिर कभी बताऊंगा। इस तरह दस वर्ष निकल गये।

ग्यारवें साल एक दिन मंगलनाथ जी ने गंगा के किनारे माला फेरते हुए राय बहादुर रुड़ाराम को देखा। रायबहादुर के सारे शरीर पर सफेद कोड़ हो गया था। महात्मा जी ने उनके पास जाकर पूछा- कहो भाई; रायसाहेब ! कैसे हो ? राय साहेब ने हंसकर कहा—महाराज जी अब मैं बहुत सुखी हूं।

राय साहेब की बात सुनकर महात्मा जी को बहुत आश्चर्य हुआ और उन्होंने पूछा— राय साहेब ! पहले जब आप सुखी थे। तब तो आप कहते थे कि—मैं बड़ा दुखी हूं। और अब जब कि सारे शरीर में सफेद कोड़ हो रहा है तब कहते हो कि—मैं तो बड़ा सुखी हूं। आपकी ये बात हमारी समझ में नहीं आई। अतः बताइये कि इस बात में क्या रहस्य छिपा हुवा है।

रुड़ाराम जी ने कहा--महाराज जी ! मेरी इस बात में एक महान रहस्य छिपा हुवा है। आप इस आसन पर विराजिये। मैं आपको सब बात सुनाता हूं—

आप जैसे महा पुरुषों के साथ सत्संग करके मैंने ये बात समझली है कि ये मनुष्य का शरीर परमात्मा को पहचानने और भजन करने को मिला है। यही बात सोच कर मैं अपने लड़कों व पत्नी से कहा करता था कि—मेरी आयु ६० वर्ष की हो गई है। अब मुझे हरिद्वार जाकर भजन करने दो।

मेरी बात सुनकर मेरे लड़के कहते थे कि—आप हमें छोड़ कर जावोगे तो हम रेलगाड़ी की पटरी पर सिर रखकर अपनी जान दे देंगे। मेरी पत्नी कहती थी कि—मुझे छोड़कर जावोगे तो मैं कुएं में कूद कर मर जाऊंगी।

अपनी पत्नी और पुत्रों की बातों को सत्य समझ कर मैंने भी घर छोड़कर हरिद्वार में रहने का विचार त्याग दिया। परन्तु मेरे मन में तो भजन करने की सच्ची लगन थी। अपने मन का संकल्प पूरा न होना ही दुःख है। इसीलिये पहले मैं आपसे कहा करता था कि—मैं तो बड़ा दुःखी हूं।

अब इस वर्ष किसी पिछले पाप के फलस्वरूप मेरे शरीर में सफेद कोढ़ हो गया। बहुत इलाज कराने पर भी कुछ लाभ नहीं हुवा। अपने चारों बेटों को चार चार लाख रुपये देकर तथा पत्नी के नाम पर मकान करके मैंने अपनी सम्पत्ति का बटवारा भी कर दिया।

बटवारा करने के दो महिने बाद एक दिन मेरे बेटों ने व उनकी माता ने मुझे इस प्रकार कहा—आप पहले हरिद्वार में जाकर भजन करने की बात कहा करते थे। अब आपके शरीर में कोढ़ हो गया है अतः अब आपको हरिद्वार चले जाना चाहिये। हमें आपके पास बैठने में भी डर लगता है। कहीं हमको भी कोढ़ नहीं हो जावे।

अपने परिवार वालों की बातें सुनकर मैं समझ गया कि वास्तव में अपना कोई भी नहीं है। संसार के सब सम्बन्ध स्वार्थ को लेकर ही हैं। पैसा लेकर वेश्या जैसे पुरुष को त्याग देती है। गौ का दूध निकालने के बाद बूढ़ी गाय को लोग त्याग देते हैं। बिना फल के वृक्ष को, पक्षी त्याग देते हैं। इसी प्रकार अब जब कि मेरे शरीर में कोढ़ हो गया है। मैंने सब सम्पत्ति अपने पुत्रों को सौंप दी है तब निकम्मा समझकर सबने मेरा त्याग कर दिया है। बुढ़ापे में सेवा करने के बदले मुझे कहते हैं कि—हमें आपके पास बैठने में भी डर लगता है; आप हरिद्वार जाकर भजन करो।

परिवार के व्यवहार से मुझे पूर्ण वैराग्य हो गया और मैं हरिद्वार चला आया। यहां पर मेरे एक मित्र हैं; उनके पास मैंने पहले से ही एक लाख रुपया रख दिया था। उस रुपये के ब्याज से खूब धर्म पुण्य करूंगा। मेरी ममता सबसे टूट गई है। अतः अब भजन भी खूब करुंगा।

मेरे मन का संकल्प पूरा हो गया है। मैं हरिद्वार आगया हूं। भजन करते हुए गंगा के किनारे अपना शरीर छोड़ूंगा। इसी से मैं कहता हूं कि– मैं बड़ा सुखी हूं।

राय साहेब रुड़ाराम जी की बात सुनकर महात्मा मंगल नाथ जी बहुत प्रसन्न हुए और आशीर्वाद देते हुए बोले—आप पर भगवान की बड़ी कृपा हुई है।

शिष्य ने कहा—गुरुजी ! जिस प्रकार आपने ये बात बतलाई कि—अज्ञान चार प्रकार का होता है। उसी प्रकार ये भी बताने की कृपा करें कि ज्ञान कितने प्रकार का होता है ?

गुरुजी ने कहा—पुत्र ! वेदांत शास्त्र के अनुसार ज्ञान तीन प्रकार का होता है—१. प्रत्यक्ष ज्ञान २. परोक्ष ज्ञान ३. अपरोक्ष ज्ञान। इन तीनों के बारे में मैं तुम्हे क्रमशः बताता हूं—

१. प्रत्यक्ष ज्ञान—इन्द्रियों के द्वारा जिस वस्तु का ज्ञान होता है उसे प्रत्यक्ष ज्ञान कहते हैं जैसे—नेत्रों के द्वारा रूप का ज्ञान होता है, कानों द्वारा शब्द का, नाक द्वारा गंध का, जिह्वा द्वारा स्वाद का व त्वचा द्वारा स्पर्श का ज्ञान होता है।

२. परोक्ष ज्ञान—जो वस्तु हमें दिखाई नहीं देती किन्तु दूसरों के मुख से सुनकर अथवा शास्त्रों का अध्ययन करने से जिसका ज्ञान होता है उसे परोक्ष ज्ञान कहते हैं। जैसे—ईश्वर, स्वर्ग व नर्क हमें अपने नेत्रों से दिखाई नहीं देते फिर भी हम मानते हैं कि ईश्वर है। पापात्मा नर्क में और पुण्यात्मा स्वर्ग में जाते हैं।

३. अपरोक्ष ज्ञान—परमात्मा सत-चित-आनंद रूप है। इस बात का अनुभव जब बुद्धि द्वारा हो जाता है तब इस आत्म अनुभव को ही अपरोक्ष ज्ञान कहते हैं।

विषयों के ज्ञान से भोगों में प्रवृति होती है और जीवन भोगी बन जाता है। आत्मज्ञान से मन भोगों से उपराम होकर आत्मा के आनंद स्वरूप में मग्न रहता है।

卐 ज्ञान का साधन; विचार है 卐

शिष्य ने कहा—गुरुजी ! अज्ञान चार प्रकार का होता है और ज्ञान तीन प्रकार का होता है। ज्ञान की प्राप्ती के लिये ज्ञानवान पुरुषों के पास जाकर सत्संग करना चाहिये। ये बात तो मेरी समझ में आगई। अब ये बतलाने की कृपा करें कि— ज्ञान का साधन क्या है ?

गुरुजी ने कहा—पुत्र ! ज्ञान का साधन विचार है। शिष्य को चाहिये कि गुरुजी के पास बैठकर सत्-असत् का विचार करे। तेरे कल्याण के लिये मैं तुझे बताता हूं कि विचार किस प्रकार से करना चाहिये—

विचार करने से ज्ञात होता है कि—संसार में मुख्यरूप से दो वस्तु हैं– १. **दृष्टा अर्थात् देखने वाला। २. दृश्य अर्थात् दिखाई देने वाला।** इन दोनों में से हम क्या हैं ? इसी बात पर विचार करना चाहिये।

ये बात भी याद रखनी चाहिये कि—दिखाई देने वाले दृश्य बदलते रहते हैं परन्तु देखने वाला नहीं बदलता तथा देखने वाला, दिखाई देने वाली वस्तु से अलग होता है। जैसे—घड़े को देखने वाला घड़े से अलग होता है।

इसी प्रकार विचार करने से मालूम होता है कि आत्मा— शरीर, मन व बुद्धि; तीनों को देखने वाला है तथा तीनों से अलग है।

इस बात को अच्छी तरह से जान लेने पर ही ये निश्चय होता है कि—मैं शरीर नहीं हूं। मैं मन भी नहीं हूँ। मैं बुद्धि भी नहीं हूं। ये तीनों तो जड़ हैं और आत्मा चेतन है। शरीर का नाश होने पर भी आत्मा का नाश नहीं होता है।

शिष्य ने कहा—गुरुजी ! संसार के सभी स्त्री पुरुष विषय सुख में ही मग्न हो रहे हैं। बहुत कम लोग आत्मसुख से बारे में जानते हैं अतः कृपा करके आप ये बताइये कि सुख कितने प्रकार का है तथा विषयसुख और आत्म सुख में क्या फर्क है ?

गुरुजी ने कहा—पुत्र। सुख तीन प्रकार का होता है—

१. तामस सुख २. राजस सुख ३. सात्विक सुख। तामस और राजस सुख का ही नाम विषय सुख है तथा सात्विक सुख को आत्म सुख भी कहते हैं। विषय सुख का अनुभव इन्द्रियों द्वारा होता है इसलिये इसे इन्द्रियजन्य सुख भी कहते हैं। विषय सुख सदा नहीं रहता। आत्मसुख का अनुभव शुद्ध बुद्धि द्वारा किया जाता है। आत्म सुख सदा रहता है। अब तू तीन प्रकार के सुखों के बारे में समझ--

१. तामस सुख—निद्रा, आलस और प्रमाद के समय जिस सुख की प्रतीति होती है उसे तामस सुख कहते हैं। तामस सुख आत्मसुख को ढ़क लेता है; मन को मोहित कर लेता है तथा बुद्धि को कमजोर करता है।

२. राजस सुख—जो सुख पहले तो अमृत के समान प्रिय लगता है तथा परिणाम में विष के समान दुःखदायी हो जाता है उसे राजस सुख कहते हैं जैसे मिर्ची व मिठाई खाने में स्वादिष्ट लगती है किंतु परिणाम में पेट खराब करती है।

३. सात्विक सुख—जो सुख पहले विष के समान कड़ुवा लगता है तथा परिणाम में अमृत के समान कल्याणकारी होता है उसे सात्विक सुख कहते हैं। ब्रह्मचर्य का पालन करने से, सेवा करने से व परमेश्वर का ध्यान करने से सात्विक सुख की प्राप्ती होती है।

卐 तीन प्रकार का दुःख 卐

शिष्य ने कहा—गुरुजी। आप कहते हैं कि १. तामस २. राजस ३. सात्विक; तीन प्रकार का सुख होता है। अब कृपा करके ये बताइये कि दुःख कितनी तरह का होता है?

गुरुजी ने कहा—पुत्र। दुःख तीन प्रकार का होता है—

१. आध्यात्मिक दुःख २. अधिभौतिक दुःख ३. अधिदैविक दुःख। इन तीनों के बारे में मैं तुझे क्रमशः समझाता हूं—

१. आध्यात्मिक दुःख—अपने शरीर व इन्द्रियों के संयोग से; शारीरिक रोग आदि से अथवा अपनी इच्छानुसार कार्य न होने से जो मानसिक दुःख होता है उसे अधिभौतिक दुःख कहते हैं!

२. आधिभौतिक दुःख—स्त्री, पुत्र, सेवक व शत्रु आदि के द्वारा; व चोर, डाकू, व्याघ्र, बिच्छु, तथा सर्प आदि से जो दुःख होता है उसे अधिभौतिक दुःख कहते हैं।

३. आधिदैविक—अग्नि लगने से, जल में डूबने से, अधिक वर्षा से, आँधी-तूफान वायु आदि से जो दुःख होता है उसे आधिदैविक दुःख कहते हैं।

इन तीनों प्रकार के दुःखों से छुटकारा पाना ही पुरुषार्थ है। जो दुःख भोग चुके तथा जो दुःख भोग रहे हैं उसके लिये उपाय न करके आगे आने वाले दुःखों से बचने का उपाय करना चाहिये।

धन के अभाव का दुःख, धन आने से; प्रिय के वियोग का दुःख; प्रिय के संयोग से दूर होता है किन्तु जो दुःख एक बार दूर हो जाता है वही दुःख थोड़े समय बाद फिर आ जाता है। हमारा पुरुषार्थ क्षुधानिवृत्ति के समान है। रोज पेट भरते हैं और रोज भूख लग जाती है।

दुःख; चित्त का धर्म है—उपाधी द्वारा ही आत्मा में दुःख भोग का सम्बन्ध होता है। ये दुःख आत्म ज्ञान द्वारा ही दूर होगा।

शिष्य ने कहा—गुरुजी। संसार के स्त्री-पुरुषों के स्वभाव भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं अतः कृपा करके ये बताइये कि मनुष्य कितने प्रकार के होते हैं ?

गुरुजी ने कहा—पुत्र ! यों तो संसार में अनेक प्रकार के स्त्री-पुरुष हैं किन्तु महापुरुषों का कहना है कि मनुष्य चार प्रकार के हैं—१. पामर २. विषयी ३. जिज्ञासू ४. मुक्त।

१. पामर—शास्त्र की मर्यादा का त्याग करके जो मनमाना आचरण करता है। माता, पिता, गुरू, धर्म व शास्त्र को नहीं मानता है। पशु के समान खाना और सोना ही जिसका काम है उसे पामर पुरुष कहते हैं।

२. विषयी—धर्म शास्त्र की मर्यादा के अनुसार जो विषयों को भोगता है। माता, पिता, गुरू व अतिथि का आदर करता है। अपने सत्-कर्मों के फलस्वरूप जो दिव्य भोगों को भोगने की इच्छा से स्वर्ग में जाना चाहता है। उसे विषयी पुरुष कहते हैं।

३. जिज्ञासू—जिसके मन में परमात्मा को जानने की इच्छा है। जिसको सत्-असत् का विवेक व शास्त्र का ज्ञान है परन्तु आत्मा का साक्षात्कार न होने के कारण जिसको अपने ज्ञान का पूर्ण निश्चय नहीं है। परमार्थ को जानने वाले ऐसे पुरुष को जिज्ञासू कहते हैं।

४. मुक्त—जिसमें आत्मा का साक्षात्कार कर लिया है तथा जिसका निश्चय दृढ़ है। जो सदा अपने आत्मस्वरूप में मग्न रहता है। ऐसे परम विवेकवान पुरुष को मुक्त कहते हैं।

याज्ञवल्क्य जी, अष्टावक्रजी, वेदव्यास जी, शुकदेव जी, महर्षि वशिष्ठ, देवर्षि नारद, महाराजा जनक आदि की श्रेणी के महापुरुष जीवनमुक्त कहे जाते हैं।

卐 अज्ञान कहाँ से आया ? 卐

शिष्य ने कहा—गुरुजी । महापुरुष कहते हैं कि—अज्ञान के कारण ही जीवात्मा देह के मिथ्या बन्धन में बधकर कष्ट पा रहा है । अतः कृपा करके ये बताइये कि–**अज्ञान कहाँ से आया ?**

गुरुजी ने कहा—पुत्र ? इस बात का उत्तर कोई भी नहीं दे सकता । प्रकाश को देखकर कोई ये पूछे कि अन्धकार कहाँ से आया ? तो इसका उत्तर कोई क्या देगा ? अतः तुम ऐसा समझो कि प्रकाश व अन्धकार के समान ज्ञान व अज्ञान दोनों ही अनादी हैं । जहां से ज्ञान आता है वहीं से अज्ञान भी आता है; ऐसा हमने महापुरुषों से सुना है । किन्तु ये कोई नहीं बता सकता कि—**पहले अंड़ा हुवा या मुर्गी ?**

किसी आदमी के घर में सर्प या बिच्छु आ जावे तो वह तुरन्त उसको मारने का ही उपाय करता है । वह ये नहीं सोचता कि यह साँप कितना जहरीला है ? कितना लम्बा है ? कितना काला है ? यह बिच्छु कितना बड़ा है ? यह मकान में कहाँ से आया ? इसी प्रकार अज्ञान कहाँ से आया ? इस बात को छोड़कर अज्ञान को नष्ट करने का ही उपाय करना चाहिये ।

रास्ते में चलते समय कोई आदमी खड्डे में गिर जावे तो वह तुरन्त उस खड्डे में से निकलने का उपाय करता है । इसी प्रकार नदी में कोई आदमी बह.जावे या अचानक मकान में आग लग जावे तो वह ये नहीं सोचता कि मैं नदी में क्यों बह गया ? आग क्यों लग गई ? वह तो पानी व आग से बचने का ही उपाय करता है ।

मैं माता के गर्भ में कहाँ से आया ? ये विचार न करके प्राणी सुख पूर्वक जीवन व्यतीत करना चाहता है । इसी प्रकार अज्ञान कहाँ से आया ? इस पर विचार न करके; जनम-मरण के बन्धन से छूटने का ही उपाय करना चाहिये ।

हंसा बगुला एक सम; मानसरोवर माँहि ।
बगुला ढूँढ़े माछली, हंसा मोती खाँहि ॥

मानसरोवर में हंस भी रहते हैं और बगुले भी रहते हैं। हंस मोती चुगते हैं और बगुले मछलियाँ खाते हैं। इसी प्रकार संसार में ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी हैं ज्ञानी आत्मानन्द में मग्न रहते हैं और अज्ञानी विषयानन्द में—

एक अनाथ कन्या भीख मांगकर अपना पेट भरा करती थी और एक टूटे-फूटे झोंपड़े में किसी बूढ़ी भिखारन के साथ रहा करती थी। वह कन्या कुछ सुन्दर भी थी।

जिस नगर में ये कन्या रहती थी उस नगर का राजा वेष बदल कर प्रजा के सुख-दुख को जानने के लिये नगर में घूमा करता था। एक दिन राजा ने इस कन्या को भीख मांगते हुए देख लिया। वह कन्या के पास गया और बोला—

तू गरीब और जवान है; भीख मांगना तेरे लिये ठीक नहीं है। मैं राजा का पुराना व विश्वास पात्र नौकर हूँ। तू मेरे साथ राजा के पास चल। मैं तुझे राजमहल में अच्छी सी नौकरी दिलवा दूँगा व तू कहेगी उसी सिपाही से तेरा विवाह भी करवा दूँगा।

उसकी बात सुनकर वह खूब हंसी और बोली—क्या धरा है राजमहल में ? मैं दिन भर मांग-मांग कर बीसों चीजें खाती हूं। शाम को ७ बजे ही सो जाती हूं और सबेरे ९ बजे उठती हूं। महिने में एक बार स्नान कर लेती हूं। मेरे जितना सुख तो राजा को भी नहीं होगा।

उसकी बात सुनकर राजा को बहुत आश्चर्य हुवा और वह चुपचाप अपने महल में लौट आया।

卐 भोगों का नशा 卐

अकबर बादशाह के जमाने में देहली में एक घोड़ों का सौदागर रहा करता था। वह पहले नम्बर का शराबी था। एक दिन शराब के नशे में वह बीच सड़क में चला जा रहा था कि अचानक पीछे से बादशाह की सवारी आगई। बादशाह हाथी पर सवार था। हाथी चलाने वाले महावत ने जोर से आवाज देकर कहा—ओ भले आदमी एक तरफ हो जा।

महावत की आवाज सुनकर वह शराबी खड़ा होगया और बोला—अबे! जानता नहीं मैं सौदागर हूं; तेरे हाथी को भी खरीद सकता हूं। मैं सड़क के बीच से नहीं हटूंगा। महावत ने कहा—जानता है; हाथी पर कौन है। शराबी बोला—कोई भी हो; मैं उसे भी खरीद लूंगा।

शराबी की बात सुनकर सवारी के साथ चलने वाले सिपाहियों ने उसे गिरफ्तार कर लिया और ले जाकर जेल में बन्द कर दिया व पिटाई भी की जिससे थोड़ी ही देर में उसका सारा नशा उतर गया।

दूसरे दिन दरबार में बादशाह के सामने जब उसको हाजिर किया गया तब बादशाह ने उससे कहा—कल हाथी पर हम सवार थे; क्या तुम हमको खरीद सकते हो? वह शराबी हाथ जोड़कर बोला—हुजूर! वह तो मेरा नशा बोल रहा था; मैं नहीं। पीट खाते ही नशा भाग गया।

शराबी की बात सुनकर बादशाह हंस पड़ा और उसको माफी देकर छोड़ दिया।

शराबी सौदागर की तरह विषयी पुरुष को भी भोगों का नशा चढ़ा रहता है और वह जहाँ-तहाँ भोगों की ही बातें किया करता है। विषय रस में मतवाले हुए भोगी अपने आपको योगी से भी श्रेष्ठ समझते हैं।

धनी लोग अपने मनोरंजन के लिये सफेद तोता पाला करते हैं। वे उस तोते को पिंजरे में नहीं रखकर एक लोहे के सरिये पर खुला बिठा देते हैं। उस सरिये के दोनों सिरों पर लोहे की जंजीर बंधी रहती है जिसके सहारे सरिया झूलता रहता है।

मूर्ख तोता उस सरिये को दोनों पैरों से पकड़े रहता है। आजाद होते हुए भी वह नहीं उड़ता है; वह समझता है कि परों से सरिया छोड़ते ही मैं नीचे गिर जाऊंगा! मैं उड़ सकता हूं; इस बात को तो वह भूल ही जाता है।

इसी प्रकार देह में आते ही जीवात्मा में अपने सत्-चित-आनन्द रूप को भूल जाता है और ये समझने लगता है कि देह को छोड़ते ही दुःखी हो जाऊंगा। इसी कारण प्रसन्नतापूर्वक कोई भी प्राणी अपना शरीर छोड़ना नहीं चाहता। यह एक प्रकार की मूर्खता ही है।

बन्दर को पकड़ने वाले एक ऐसे बर्तन में, जिसका मुंह छोटा होता है; चने भरकर जमीन में गाड़ देते हैं। जब बन्दर आकर चने खाने लगता है तब खाते-खाते ऊपर के चने समाप्त होने पर अन्दर के चने निकालने के लिये बर्तन में हाथ डालता है।

मुट्ठी भरकर चने निकालते समय उसकी मुट्ठी बर्तन के मुंह में फंस जाती है। जब उसे पकड़ने वाला आता है तब वह भागना तो चाहता है परन्तु मुट्ठी नहीं खोलता इसी कारण पकड़ा जाता है। वह समझता है कि मुट्ठी खोलने से चने छूट जायेंगे। यही उसकी मूर्खता है।

तोते और बन्दर के समान सभी प्राणी मोहरूपी बन्धन में बंधकर महान कष्ट पा रहे हैं। इस ममता-बन्धन रूपी दुःख का कारण वे स्वयं ही हैं।

शिष्य ने कहा—गुरुजी ! आप कहते हैं कि मोहरूपी बंधन में बंधकर ही सभी प्राणी कष्ट पा रहे हैं अतः कृपा करके ये बताइये कि मोह कैसे होता है तथा मोह कितने प्रकार का है ?

गुरुजी ने कहा—पुत्र। किसी भी पदार्थ का अधिक संग करने से उस पदार्थ के प्रति जो आसक्ति हो जाती है उसे मोह कहते हैं। जिस वस्तु से मोह होता है उसके मिलने पर मन सुख का अनुभव करता है और न मिलने पर दुःख करने लगता है। मुख्य रूप से ये मोह तीन प्रकार का है—१. सम्पत्ति का मोह २. शरीर का मोह ३. कीर्ति का मोह। इन तीनों के बारे में मैं तुझे क्रमशः समझाता हूं—

१. सम्पति का मोह—सम्पत्ति से ही सब सुख मिलते हैं; धन के बिना संसार में कोई भी नहीं पूछता। इस तरह का विचार मन में रखकर परमेश्वर को भूलकर दिन रात पैसा जमा करने की ही चिन्ता करते रहना; सम्पत्ति का मोह कहलाता है।

२. शरीर का मोह—मेरे सब परिवार वाले सदा मेरे आस-पास ही रहें। स्त्री सुख से बढ़कर और कोई सुख नहीं है। इस शरीर द्वारा जितना भी भोग भोग लूँ उतना ही अच्छा है। इस प्रकार का विचार रखकर अपने व दूसरों के शरीरों से स्नेह करना ही शरीर का मोह कहलाता है।

३. कीर्ती का मोह—मैं करोड़पति कैसे बनूँ ? सब लोग मेरा आदर कैसे करें ? अखबारों में मेरा नाम कैसे आवे ? इस तरह के विचार मन में रखकर दिन रात बड़ा आदमी बनने की सोचते रहना व बड़ा बनने का उपाय करते रहना ही कीर्ति का मोह कहलाता है।

卐 मोह क्यों होता है ? 卐

शिष्य ने कहा—गुरुजी ! जब जीवात्मा सत्-चित आनन्द रूप है तो फिर उसे संसार से मोह क्यों होता है ?

गुरुजी ने कहा—पुत्र ! **माया के कारण जीव अपने सहज स्वरूप को भूल जाता है और इस मिथ्या जगत को सत्य समझने लगता है। जगत को सत्य समझने के कारण ही मोह होता है।**

जो जगत को सत्य समझेगा वह जगत के पदार्थों को भी सत्य समझेगा तथा पदार्थों से मिलने वाले क्षणिक सुख को ही वास्तविक सुख समझकर सदा भोग पदार्थों से मोह करता रहेगा। मिट्टी में घर बनाकर जिस प्रकार बालक ये कहते हैं कि ये घर मेरा है; ये घर तेरा है। इसी प्रकार मनुष्य भी माया के कारण संसार के मिथ्या पदार्थों को अपना मानकर मोह में लीन हो रहा है। जीवात्मा को मोह रूपी बन्धन कैसे होता है ? इस बारे में रामायण की ये चौपाइयाँ ध्यान देने योग्य हैं—

ईश्वर अंश जीव अविनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी ॥
सो माया बस भयउ गोसाँई। बँध्यो कीर मरकट की नाँई ॥
जड़ चेतन हि ग्रंथि परि गई। जदपि मृषा छूटत कठिनई ॥
जब ते जीव भयउ संसारी। छूट न ग्रंथि न होई सुखारी ॥
श्रुति पुरान बहु कहेउ उपाई। छूट न अधिक अधिक अरुझाई ॥
जीव हृदय तम मोह विसेषी। ग्रंथि छूट किमि परइ न देखी ॥

वास्तव में जीवात्मा; परमात्मा का ही अंश है परन्तु देह में आकर यह १. ईश्वर के स्वरूप को २. माया के स्वरूप को ३. अपने स्वरूप को भूल गया है। शरीर के धर्म को यह अपना धर्म मान रहा है। ये भूल बहुत समय तक सत्संग करने से ही सुधरती है।

卐 माया का स्वरूप क्या है ? 卐

शिष्य ने कहा—गुरुजी । आप कहते हैं कि माया के कारण ही जीव अपने सहज स्वरूप को भूल जाता है अतः ये बताने की कृपा करें कि—जीवों को मोहित करने वाली माया का क्या स्वरूप है ?

गुरुजी ने कहा—मैं और मेरा; तू और तेरा; ऐसा कहना ही माया है । इन्द्रियों के विषयों में तथा जहाँ तक मन जाता है; वह सब माया का कार्य है ।

माया दो प्रकार की है—**१. विद्या** (सत्-रज-तम; इन तीनों गुणों वाली तथा जगत की रचना करने वाली)

२. अविद्या—(जीवों को दुःख देने वाली) रामायण में माया का वर्णन इस प्रकार है—

मैं अरु मोर तोर तैं माया । जेहिं सब कीन्हें जीव निकाया ।।
गो गोचर जहँ लगि मन जाई । सो सब माया जानेहु भाई ।।
तेहि कर भेद सुनहु तुम सोऊ । विद्या अपर अविद्या दोऊ ।।
एक दुष्ट अतिसय दुःख रुपा । जा बस जीव परा भव कूपा ।।
एक रचइ जग गुन बस जाकें । प्रभु प्रेरित नहि निज बल जाके ।।

यह माया सत् भी नहीं है और असत् भी नहीं है । जिस प्रकार रस्सी में जो सर्प का भ्रम हो जाता है वह सत् भी नहीं है और असत् भी नहीं है ।

रस्सी को सर्प मानने से; जब तक रस्सी का ज्ञान नहीं होगा तब तक सर्प का भय बना रहेगा । इसी प्रकार परमात्मा का ज्ञान जब तक नहीं होगा तब तक जगत सत्य ही प्रतीत होता रहेगा ।

तुम ये बात याद रखो कि जो असत् को सत्य सा प्रतीत करा देती है उसे ही माया कहते हैं ।

शिष्य ने कहा—गुरुजी ! अविद्या रूपी माया का स्वभाव ही जीवों को दुःख देने वाला है। इसी कारण समस्त जीव माया के गुणों से मोहित होकर नाना प्रकार के कष्ट भोग रहे हैं; ये बात तो मैं समझ गया। अब आप कृपा करके ये बताइये कि—माया जाल से छुटकारा कैसे मिले ?

गुरुजी ने कहा—पुत्र ! भगवान से विमुख होकर मनुष्य चाहे करोड़ों उपाय करे परन्तु उसे संसार के बन्धन से कोई भी नहीं छुड़ा सकता। जिसने सब जीवों को अपने वश में कर रखा है; वह माया भी परमात्मा से डरती है। भगवान अपनी इच्छानुसार माया को नचाया करते हैं। अतः **माया से छुटकारा पाने का एक मात्र उपाय है—भगवत् शरणागति।**

रघुपति विमुख जतन कर कोरी। कवन सकइ भव बंधन छोरी ॥
जीव चराचर बस करि राखे। सो माया प्रभु सो भय भाखे ॥
भ्रकुटि विलास नचावइ ताही। अस प्रभु छाड़ि भजिअ कस काही ॥
मन क्रम वचन छाँडि चतुराई। भजत कृपा करिहहिं रघुराई ॥

हरि माया कृत दोष गुन; बिनु हरि भजन न जाहि।
भजिअ राम तजि काम सब, अस विचारि मन माहिं ॥

श्री हरि की माया के द्वारा रचे हुए दोष और गुण श्री हरि के भजन बिना नहीं जाते। मन में ऐसा विचार कर, सब कामनाओं को छोड़कर निष्काम भाव से राम जी का भजन करना चाहिये। श्रीमद्भगवगीता में भी लिखा है—

देवो येषा गुणमयी, मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते, माया मेतां तरन्ति ते ॥

卐 भजन कैसे किया जावे 卐

शिष्य ने कहा—गुरुजी ! ये बात तो मैं समझ गया कि भगवान का भजन करने से ही माया से छुटकारा मिल सकता है। अब कृपा करके ये बताइये कि–भजन कैसे करना चाहिये ?

गुरुजी ने कहा—पुत्र ! तन, मन और वचन; इन तीनों की चतुराई छोड़कर, एकान्त में बैठकर, एकाग्र मन से प्रभु का भजन करना चाहिये। **ध्यान सहित नाम जप करना चाहिये।**

भजन करते समय नेत्रों से इधर-उधर के दृश्य न देखें। कानों से दूसरे शब्द नहीं सुनें तथा दूसरों से बातचीत नहीं करें। तन, मन, वचन की एकाग्रता होते ही भजन में आनन्द आने लगता है।

१. **तन की चतुराई**—भगवान का भजन करते समय; शरीर को बार बार टेढ़ा सीधा करना, आलसी की तरह बिस्तरे पर बैठकर तकिये का सहारा लेकर माला फेरना, तथा दूसरों को दिखाकर भजन करना, दूसरों को ठगने के लिये, चन्दन, माला, जटा व भस्म आदि धारण करना ही तन की चतुराई है।

२. **वचन की चतुराई**—माला फेरते समय बात करना तथा जल्दी-जल्दी जप करना व पाठ करना ही वचन की चतुराई है।

३. **मन की चतुराई**—भजन करते समय मन से भोगों का चिन्तन करना ही मन की चतुराई है।

या जग जीवन को यही फल है छाँड़ सबै भजले रघुराई।
ढूँढन संत महंतन को पचाकर बात यही बतलाई॥

शिष्य ने कहा—गुरुजी ! सीनेमा आदि सांसारिक बातों में तो मन खूब लगता है तथा भगवान के भजन में तथा परमार्थ के कामों में मन नहीं लगता। इसका क्या कारण है ?

गुरुजी ने कहा—मन तो चंचल है। बिना साधन के तो यह भजन में लगेगा नहीं। इसके लिये मनुष्य को थोड़ा पुरुषार्थ करना चाहिये। नये घोड़े को अपनी इच्छानुसार चलाने के लिये लगाम व चाबुक की जरूरत होती है। इसी प्रकार मन को भी शुभ कार्यों में लगाने के लिये बुद्धि रूपी लगाम व वैराग्य रूपी चाबुक की आवश्यकता है।

बुद्धि का कार्य निश्चय करने का है। **निश्चय की कमी के कारण ही मन भजन में नहीं लगता है।** एकान्त में बैठकर मन को इस तरह समझाना चाहिये—अरे मन ! तू संसार के जिन भोगों की तरफ ललचा रहा है; वे सब नाशवान हैं। भोग पदार्थों द्वारा तुझे जो सुख मिलता है; वह भी क्षणिक है। भोगों में सुख कम और दु ख ज्यादा है। भजन करने में पहले तो तुझे थोड़ा कष्ट प्रतीत होगा परन्तु परिणाम में सुख ही सुख मिलेगा।

बचपन में तैने अनेक प्रकार के खिलौनों से खेलकर समय बिताया। जवानी में सब खेलकूद छोड़कर धन व स्त्री में ही तू आनन्द मान रहा है किन्तु वृद्ध अवस्था आते ही जब तेरी इन्द्रियां शिथिल हो जायेंगी तब तुझे भोगों में भी आनन्द नहीं आयेगा। अचानक काल का हमला हो जायेगा और फिर तू पछतायेगा।

इस तरह मन को समझाने से अर्थात् मनन करने से मन को भोगों से वैराग्य हो जायेगा और भजन में अनुराग होने से आनन्द आने लगेगा तब खूब भजन होगा।

आछे दिन पाछे गये; हरि से किया न हेत।
पछताये का होत अब, जब चिड़िया चुग गई खेत ॥

卐 भगवान का स्वरूप क्या है ? 卐

शिष्य ने कहा—गुरुजी ! बहुत से लोग कहते हैं कि हमने परमात्मा को देखा तो है ही नहीं; फिर उसका भजन कैसे करें ? अतः ये बताइये कि—परमात्मा का स्वरूप क्या है ?

गुरुजी ने कहा—पुत्र ! परमात्मा का आदि-अंत किसी ने भी नहीं पाया। बुद्धि द्वारा अनुमान करके वेदों ने इस प्रकार वर्णन किया है कि—परमात्मा बिना ही पैर के चलता है; बिना कान के ही सुनता है; बिना हाथ के नाना कर्म करता है; बिना मुँह के सारे रसों को ग्रहण करता है, बिना वाणी के ही बहुत अच्छा बोलता है; बिना शरीर के ही वह स्पर्श करता है; बिना आंखों के ही वह देखता है; बिना नाक के ही सूँघता है। इस प्रकार परमात्मा के सभी कार्य अलौकिक हैं जिसकी महिमा कही नहीं जा सकती।

आदि अंत कोउ जासु न पावा। मति अनुमान निगम अस गावा॥
बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना। कर बिनु करम करइ विधि नाना॥
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु बानी बकता बड़ जोगी॥
तन बिनु परस नयन बिनु देखा। ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा॥
अस सब भाँति अलौकिक करनी। महिमा तासु जाइ नहिं बरनी॥

शास्त्रों में परमात्मा को सत्-चित्-आनन्द स्वरूप बतलाया गया है। सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मा के मुख्य दो रूप हैं—
१. निर्गुण रूप २. सगुण रूप।

निर्गुण रूप से जो परमात्मा सर्वत्र व्याप्त है वही सर्व शक्तिमान परमात्मा अपनी इच्छा से धर्म की स्थापना करने के लिये तथा दुष्टों का संहार करने के लिये विष्णु, राम, कृष्ण, नरसिंह, वामन, दत्तात्रेय आदि अनेक प्रकार के अवतार धारण करके पृथ्वी पर आते हैं। ये अवतार ही भगवान के सगुण रूप हैं; जिनका ध्यान करने से महान आनन्द प्राप्त होता है।

सगुनहि अगुनहि नहिं कछु भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुध वेदा॥
अगुन, अरूप, अलख, अज, जोई। भगत प्रेम बस सगुन सो होई॥
जो गुन रहित सगुन सोइ कैसे। जल, हिम, उपल बिलग नहिं जैसे॥
सहज प्रकाश रूप भगवाना। नहिं तहँ पुनि विग्यान बिहाना॥

※ भगवान शब्द का तात्पर्य ※

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य; वीर्यस्य, यशसः प्रिय।
ज्ञान, वैराग्योश्चैव; षण्णां भग इतीरणा॥

१. सम्यग कर्म २. सम्यग वीर्य ३. सम्यग यश ४. सम्यग श्री ५. सम्यग ज्ञान ६. सम्यग वैराग्य। ये ६ ऐश्वर्य जिनमें हों उनको भगवान कहते हैं।

उत्पत्ति प्रलयं चैव; जीवानामगतिं गतिम्।
वेदविद्या मविद्यां च; स वाच्यो भगवानिति॥

१. उत्पत्ति २. प्रलय ३. जीवों की गति, और ४. अगति का सामर्थ्य, ५. विद्या और ६. अविद्या का पूर्ण ज्ञान जिसे हो, उसे ही भगवान कहते हैं।

महापुरुषों के मुख से हमने सुना है कि भगवान का स्वरूप पांच प्रकार है—

१. **पर रूप**—माया मण्डल से परे वैकुण्ठाधिपति।
२. **व्यूह रूप**—क्षीर-शायी; भगवान वासुदेव।
३. **विभव रूप**—राम-कृष्ण आदि अवतार।
४. **अन्तर्यामी रूप**—सर्व शक्तिमान रूप से रहने वाले।
५. **अर्चावतार रूप**—प्राण प्रतिष्ठित मूर्तियाँ; जहाँ विधिवत् वैदिक मन्त्रों से पूजा होती है।

शिष्य ने कहा—गुरुजी ! यह बात तो मेरी समझ में आ गई कि—परमात्मा के दो स्वरूप हैं। १. निर्गुण और २. सगुण। दोनों रूप जल व बर्फ के समान एक ही हैं। अब कृपा कर के आप ये बताइये कि भगवान के दर्शन कैसे हों ?

गुरुजी ने कहा—पुत्र ! भगवान का सबसे श्रेष्ठ नाम ॐ है। इस ओंकार का श्रद्धा-विश्वास पूर्वक, लगन के साथ, प्रेम भाव से जो सवा करोड़ जप करता है उसे अवश्य ही भगवान के दर्शन होते हैं। द्रौपदी व गजराज के समान भगवान पर पूर्ण विश्वास होना चाहिये।

कोई स्त्री-पुरुष यात्रा करते हुए एक बार किसी जंगल में से गुजर रहे थे। उस जंगल में एक भयानक डाकू रहता था। उसने इन दोनों को पकड़ लिया और तलवार से दोनों का सिर काटना चाहा।

इन दोनों को भगवान पर पूर्ण विश्वास था। ये दोनों जोर-जोर से चिल्लाने लगे—हे भगवान बचावो ! गजराज की जैसे हमारी भी सहायता करो ! हम दोनों आपकी शरण हैं। इतना कहकर वे—**श्री कृष्णः शरणम् मम;** इस मन्त्र को जोर-जोर से बोलने लगे।

थोड़ी ही देर में चालीस यात्रियों का एक दल आ पहुँचा जिसे देखते ही वह डाकू भाग गया। दोनों स्त्री पुरुष हाथ जोड़कर कहने लगे कि भगवान ने हमारी पुकार सुन ली, वे बड़े दयालू हैं।

मुसीबत के समय बिना किसी को देखे, केवल आत्म विश्वास के बल पर मनुष्य प्रार्थना करता है और उसका कष्ट दूर हो जाता है। इसी प्रकार विश्वास पूर्वक भजन करने से अवश्य भगवान के दर्शन होते हैं।

बहुत समय तक धर्मपूर्वक प्रजा का पालन करने के बाद महाराजा मनुजी को वैराग्य होगया। अपने पुत्र को राज्य देकर वे महारानी शतरूपा जी को साथ लेकर तप करने के लिये नैमिषारण्य नामक तीर्थ पर चले गये।

गौमती नदी के किनारे पर बसे हुए अनेक ऋषि-मुनि संत-महात्माओं के पास जाकर उन्होंने भगवत् कथाओं का श्रवण किया। वे भी मुनियों के समान वल्कल वस्त्र पहन कर रहते थे। वे साग, फल, और कन्द का आहार करते थे।

भगवान वासुदेव में मन लगाकर वे **ॐ नमो भगवते वासुदेवाय** नामक मंत्र का जप करने लगे। उन दोनों के मन में एक मात्र यही इच्छा थी कि हम पर ब्रह्म परमात्मा को अपनी आंखों से देखें। इस प्रकार तप करते हुए इनको बहुत समय होगया।

इनका अपार तप देखकर इनको वरदान देने के लिये अनेक देवता इनके पास आये पर इन्होंने किसी से कुछ नहीं मांगा। तब अंत में परब्रह्म परमात्मा की अमृतमयी वाणी इनको सुनाई दी। जिसे सुनते ही इनके शरीर हृष्ट पुष्ट हो गये। मन आनन्द से भर गया।

आकाशवाणी से भी वर-मांगो; वर-मांगो शब्द सुनाई दे रहा था। दोनों हाथ जोड़कर मनुजी बोले—हे प्रभो ! आप सेवकों की इच्छा पूर्ण करने के लिये कामधेनु और कल्पवृक्ष के समान हैं। आप शरणागत के रक्षक और सब सुख देने वाले हैं।

यदि हम लोगों पर आपका स्नेह है तो प्रसन्न होकर आपका वही सुन्दर स्वरूप हमें दिखाइये; जिसका ध्यान शिवजी किया करते हैं। भगवान को उनके वचन बहुत प्रिय लगे और वे उनके सामने प्रकट हो गये।

मनुजी और शतरूपा जी ने पहले कभी परमात्मा को नहीं देखा था। विश्वासपूर्वक उन्होंने मंत्र जपा और उनका प्रेम देख कर निर्गुन, निराकर परमात्मा ने भी उनको सगुण रूप से दर्शन देकर कृतार्थ कर दिया।

इसी प्रकार अपनी माता के वचनों पर विश्वास करके परमात्मा को प्राप्त करने की इच्छा से बालक ध्रुव भी अपने घर से निकल पड़ा था। मार्ग में उसे देवर्षि नारद जी के दर्शन हो गये। उसने नारद जी के चरणों में श्रद्धा सहित प्रणाम किया और अपने मन की सब बात बतलादी।

ध्रुव की बात सुनकर नारद जी बहुत प्रसन्न हुए और उसको भगवान विष्णु का ध्यान व द्वादश अक्षर मंत्र (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय) बतलाकर तप करने के लिये मधुवन में भेज दिया। ध्रुव की तपस्या से प्रसन्न होकर ६ महीने में ही भगवान ने उसे दर्शन दिखा दिये।

इन दोनों उदाहरण से हमें ये बात समझ लेनी चाहिये कि सर्व शक्तिमान निर्गुण निराकार परमात्मा किसी को दिखाई नहीं देता है फिर भी सबकी प्रार्थना सुनता है और सहायता करता है तथा भक्ति से प्रसन्न होकर भक्त के सामने सगुण रूप में भी प्रकट हो जाता है।

बालक नहीं जानता कि उसका पिता कौन है? माता के वचनों पर विश्वास करके ही वह पिता को मानता है। इसी प्रकार धर्म शास्त्र के वचनों पर विश्वास करके ये बात भी मान लेनी चाहिये कि परमात्मा निर्गुण भी है और सगुण भी।

बिनु विश्वास भगति नहिं; तेहि बिनु द्रवहिं न राम।
राम कृपा बिनु सपनेहु; जीव न लहै विश्राम॥

शिष्य ने कहा—गुरुजी ! आपके मुख से मैंने कई बार ये बात सुनी है कि जीवात्मा-परमात्मा वास्तव में एक ही है अतः कृपा करके ये बताइये कि जीव ईश्वर कैसे है ?

गुरुजी ने कहा—तेरे प्रश्न का उत्तर तो मैं पीछे दूंगा। पहले एक गिलास गंगाजल तो ला दे। शिष्य गिलास लेकर नदी पर गया और उसमें गंगाजल भरकर गुरुजी के पास ले आया। गुरुजी ने कहा—अरे भाई ! ये गंगाजल कहां हैं ?

गंगाजल में तो नौकायें चलती हैं तथा लोग स्नान करते हैं। शिष्य ने हंसकर कहा—गुरुजी। आप तो बच्चों जैसी बातें करते हैं। नदी में गंगा जल बहुत है इसलिये उसमें लोग स्नान करते हैं तथा नौकायें चलती हैं। गिलास में तो जरासा पानी है; इसमें नौका कैसे चलेगी ? किन्तु नदी में जो जल है वही जल गिलास में है; आप पीकर देख लीजिये।

गुरुजी ने भी हंसते हुए कहा—तेरे प्रश्न का उत्तर भी तू स्वयं ही दे रहा है। नदी के जल में तथा गिलास के जल में स्वादरूपी गुण तो एक ही है। फर्क केवल कम व ज्यादा का है। इसी प्रकार जीवात्मा व परमात्मा का जो आनन्द रूपी गुण है; वह तो दोनों में समान ही है। फर्क केवल शक्ति का है। परमात्मा सर्वशक्तिमान है और जीवात्मा अल्पशक्ति वाला है।

कोई बल्ब १५ पॉवर का, कोई ६० पॉवर का, तथा कोई १०० पॉवर का होता है। किसी का रंग लाल किसी का नीला व किसी का हरा भी होता है परन्तु बिजली सबमें एक ही होती है। इसी प्रकार आत्मा सबमें एक ही है।

आतम सब में एक है, देही नाना भेक।
राव, रंक, चांडाल घर, सहजो दीपक एक ।।

शिष्य ने कहा—गुरु जी ! अभी तक मेरी समझ में ये बात नहीं आई कि माया जाल में फंसकर जीव अपने आप को कैसे भूल जाता है ? कृपा करके ये बात दृष्टान्त से समझाइये ।

गुरुजी ने कहा—राजा जनक की सभा में एक बार एक बहुत बड़ा जादूगर गया । राजा की आज्ञा से दूसरे दिन प्रातः-काल ९ बजे राज दरबार में जादूगर ने अपना खेल दिखाना शुरू किया । मोरपंख की छड़ी घुमाकर पहले उसने सब लोगों की नजर बन्द करके अनेक प्रकार के खेल-तमाशे दिखाये । उसके बाद राजा जनक के सामने छड़ी घुमाई जिससे राजा जनक को तन्द्रा आ गई और वे सिंहासन पर बैठे ही बैठे देखने लगे—

एक सुन्दर सफेद घोड़े पर बैठकर राजा जनक शिकार खेलने जंगल में जा रहे हैं । भयानक जंगल में पहुंचकर घोड़े ने राजा जनक को अपनी पीठ से गिरा दिया । तीन दिन तक जनक जंगल में भटकता रहा । चौथे दिन उसने एक कन्या को देखा जो सिर पर भोजन लिये कहीं जा रही थी । राजा ने उससे उसका परिचय पूछा और कुछ भोजन भी मांगा ।

कन्या ने कहा—मैं भंगी की कन्या हूं । अपने माता पिता के साथ उस पहाड़ी पर रहती हूँ । तू मेरे साथ विवाह करके मेरे पास ही रहने की प्रतिज्ञा करे तब तो मैं तुझे भोजन खिला सकती हूं वर्ना इसी तरह भयानक जंगल में भटक-भटक कर तुझे अपनी जान देनी पड़ेगी । वह कन्या बहुत सुन्दर थी । भूख के मारे राजा की बुद्धि कुछ काम नहीं कर रही थी । उसने भंगी कन्या की बात स्वीकार कर ली । कन्या ने उसे भोजन करा दिया और अपने साथ अपने पिता के पास ले गई तथा सब बात पिता से कह दी ।

उसी सप्ताह जनक का विवाह भंगी कन्या से हो गया। इस कन्या से पाँच वर्ष में जनक के दो पुत्र व एक पुत्री भी पैदा हो गये। सातवें वर्ष में भयंकर अकाल पड़ा जिसमें लाखों आदमी अन्न के बिना मर गये। ये भंगी परिवार भी भूखों मरने लगा। सबने जनक से कहा—हम सब में तुम्हीं जवान हो। बतावों; हम क्या करें ?

जनक तो अपने इस जीवन से पहले ही बहुत दुःखी हो रहा था। उसने कहा—लकड़ी की चिता बनाकर मैं उस पर जीते जी लेट जाता हूँ। मेरे प्राण निकलते ही तुम मेरे शरीर का मांस सेक कर खा लेना। इतना कहकर जनक ने लकड़ी की चिता पर अपने आपको जीवित जला दिया।

जादू का तमाशा समाप्त हो गया था। जादूगर राजा जनक से ईनाम मांग रहा था परन्तु जनक नेत्र बन्द किये यही समझ रहा था कि मैं जल रहा हूं। जनक के मन्त्री ने राजा के पास जाकर राजा के शरीर को हिलाया तब राजा ने आंखे खोली और आश्चर्य करने लगा। अपने गले में पड़ी हुई मोतियों की माला; राजा ने जादूगर को ईनाम में दे दी और अपने महल में आ गया।

दूसरे ही दिन राजा जनक अपने सफेद घोड़े पर बैठकर जंगल में गया वो उस पहाड़ी पर भी गया जिस पर भंगी परिवार रहता था। वहाँ पर उसने भंगी की कन्या व उसकी तीनों सन्तानों को भी देखा। सब कुछ देखकर राजा जनक वापिस महल में आगया। अब वह दिन रात यही सोचा करता था कि—**ये सच्चा या वो सच्चा ?**

कुछ दिनों बाद राजा जनक के गुरु महर्षि वशिष्ठ जी जनक के पास आये । एक दिन एकान्त में राजा जनक ने अपने मन की बात अपने गुरुजी से कही और पूछा कि—जो बात जादूगर ने एक घन्टे में अपने जादू से दिखाई वह बात जंगल में जाकर मैं स्वयम् अपनी आंखों से देखकर आया हूं । अतः मैं कौनसा जनक हूं । राज करने वाला या भंगन से व्याह करने वाला ?

महर्षि वशिष्ठ जी ने कहा—ये भी सच और वो भी सच । ये भी मिथ्या और वो भी मिथ्या । तुमने एक घन्टे में जो कुछ देखा वह सब घटना किसी दूसरे समय किसी दूसरे राजा में घट चुकी है । उस घटना को जादूगर ने तुम्हारे अन्तःकरण में तुमको दिखा दिया ।

अनेक जन्मों की बाते थोड़े ही समय में मनुष्य अपने स्वप्न में देखा करता है । इसी प्रकार राज सिंहासन पर बैठे ही बैठे तन्द्रावस्था में तुमने जो कुछ देखा वह स्वप्न के समान मिथ्या था । स्वप्न अवस्था में जागृत मिथ्या होता है और जागृत अवस्था में स्वप्न मिथ्या होता है । इसी लिये मैं कहता हूं कि—अज्ञानी को दोनों ही सत्य प्रतीत होते हैं और ज्ञानी को दोनों ही असत्य ।

जादूगर के ही समान अविद्या रूपी माया असत् को भी सत् करके दिखा देती है । राजा जनक जैसे अपने आपको भूलकर भंगन के संग से अपने को भंगी समझने लगा । इसी प्रकार इस देह का संग करके जीवात्मा भी अपने को देह समझ रहा है ।

गुरुजी से राजा जनक व जादूगर का दृष्टान्त सुनकर शिष्य को बहुत आनन्द आया। उसने कहा—गुरुजी ! अब मैं १. ईश्वर का स्वरूप २. जीव का स्वरूप ३. माया का स्वरूप व ४. जगत का स्वरूप जान गया हूं। फिर भी मेरे मन में एक प्रश्न ये है कि—अनेक लोग नित्य सत्संग में जाते हैं; अनेक लोगों को शास्त्र का ज्ञान भी है। फिर भी वे रात दिन सांसारिक भोगों के पीछे ही पड़े रहते हैं। कचन-कामिनी व कीर्ति से उनको बड़ा स्नेह रहता है।

गुरुजी ने कहा—पूत्र ! शास्त्रों को पढ़ना व सत्संग में जाकर कथा सुनना और बात है तथा सुनी व पढ़ी हुई बात को सत्य समझकर उस पर निश्चय करना और बात है। सत्य-असत्य को जानकर भी जो असत्य का त्याग नहीं करता है उसका जानना-हाथी के स्नान के समान है। नदी में स्नान करने के बाद हाथी फिर अपने शरीर पर धूल डाल लेता है। इस विषय में मैं तुझे एक छोटा सा दृष्टान्त सुनाता हूँ—

पक्षियों पर दया करके एक महात्मा ने अपने योग बल से पक्षियों को यह बात बोलना सिखा दिया कि—**शिकारी आयेगा; जाल बिछायेगा पर हम नहीं फंसेंगे।**

परन्तु जब शिकारी आया; उसने दाना डाला और जाल बिछा दिया तब सभी पक्षी एक साथ बोले—शिकारी आयेगा; जाल बिछायेगा पर हम नहीं फंसेंगे। ये बात कहते हुए सभी जाल पर आकर बैठ गये और फंस गये। शिकारी सबको पकड़ कर बेचने ले गया।

गीताजी में लिखा है कि दुःख-सुख को समान समझनेवाले जिस धीर पुरुष को यह इन्द्रियों के विषय व्याकुल नहीं कर सकते वह मोक्ष के लिये योग्य होता है।

कछुआ अपने अंगों को जैसे समेट लेता है, वैसे ही यह पुरुष जब सब ओर से अपनी इन्द्रियों को इन्द्रियों के विषयों से समेट लेता है; तब उसकी बुद्धि स्थिर होती है।

यत्न करते हुए बुद्धिमान पुरुष के भी मन को यह प्रमथन स्वभाव वाली इन्द्रियां बलात्कार से हर लेती हैं।

इसलिये मनुष्य को चाहिए कि उन सम्पूर्ण इन्द्रियों को वश में करके समाहित चित हुआ मेरे परायण स्थित होवे; बुद्धि भी स्थिर होती है।

इन्द्रियों को वश में करके भगवत्परायण न होने से मन के द्वारा विषयों का चिन्तन होता है और विषयों का चिन्तन करने वाले पुरुष की उन विषयों में आसक्ति हो जाती है और आसक्ति से उन विषयों की कामना होती है और कामना में विघ्न पड़ने से क्रोध होता है।

कोध से मूढ़ भाव उत्पन्न होता है और स्मरणशक्ति भ्रमित हो जाती है जिससे ज्ञान शक्ति का नाश होता है। बुद्धि के नाश होने से पुरुष अपने श्रेय साधन से गिर जाता है।

परन्तु स्वाधीन अन्तःकरणवाला पुरुष राग-द्वेष से रहित अपने वश में की हुई इन्द्रियों द्वारा विषयों को भोगता हुआ अन्तःकरण की प्रसन्नता और स्वच्छता को प्राप्त होता है।

जल में वायु जैसे नाव को हर लेता है वैसे ही विषयों में विचरती हुई जिस इन्द्रिय के साथ मन रहता है; वह एक इन्द्रिय ही इस अयुक्त पुरुष की बुद्धि हरण कर लेती है।

अकबर बादशाह के जमाने में जमुना के किनारे घास-पूस के झोंपड़े में एक ज्ञानवान महात्मा रहा करते थे। वे महात्मा पूर्ण वैराग्यवान भी थे। देहली नगर के अनेक अमीर-गरीब पुरुष उनके पास सत्संग करने के लिये अक्सर जाया करते थे।

अकबर बादशाह ने जब महात्मा जी की प्रसिद्धी सुनी तब अपने वजीर को महात्मा जी के पास भेजा और कहा कि उनको हमारे पास बुला लाओ। हम भी उनसे सत्सग करेंगे।

बादशाह की आज्ञानुसार वजीर महात्मा जी के पास गया और कहा कि सत्संग करने के लिये बादशाह ने आपको महल में बुलवाया है; मेरे साथ चलने की कृपा करें।

महात्मा जी ने कहा—प्यासा कूवे के पास जाता है; कूवा प्यासे के पास नहीं जाता। **बादशाह तो मेरे गुलाम का भी गुलाम है;** मैं उसके पास नहीं जाऊँगा।

वजीर महात्मा जी को नमस्कार करके चुपचाप वापिस आगया। उसने बादशाह को महात्मा जी की कही हुई बात ज्यों की त्यों सुनादी।

महात्मा जी की बात सुनकर बादशाह को बहुत आश्चर्य हुआ। वह स्वयं वजीर को साथ लेकर महात्मा जी के पास गया और पूछा कि मैं आपके गुलाम का गुलाम कैसे हूँ?

महात्मा जी ने कहा—मैंने अपने शरीर मन व इन्द्रियों को अपना गुलाम बना रखा है। परन्तु तेरी इन्द्रियों ने तुझे अपना गुलाम बना रखा है। मैं इन्द्रियों से इच्छानुसार काम लेता हूं और तेरी इन्द्रियाँ अपनी इच्छानुसार तुझे नचाती हैं। इसीसे तू मेरे गुलाम का भी गुलाम है।

卐 पाप-पुण्य का विवेक ? 卐

शिष्य ने कहा—गुरुजी ! कृपा करके ये बताइये कि पाप क्या है और पुण्य क्या है तथा पुण्यात्मा व पापात्मा की पहचान क्या है ?

गुरुजी ने कहा—पुण्य। पाप व पुण्य मन के भाव पर निर्भर है। मनुष्य अपनी पुत्री को भी गले लगाता है और पत्नी को भी गले लगाता है। देखने में दोनों क्रियायें एक ही हैं परन्तु मन का ही फर्क है।

इसी प्रकार दूसरों को व अपने को सुख हो। ऐसी पवित्र भावना से कर्म करना ही पुण्य है तथा अपने स्वार्थ के लिये दूसरों को कष्ट देना या उनका नुकसान करना ही पाप कहलाता है।

देश की रक्षा के लिये व दूसरों के हित के लिये चोर, डाकू व आततताई को मारना व पीटना पुण्य है परन्तु अपने स्वार्थ के लिये दूसरे को मारना व पीटना पाप है।

अतः हमें चाहिये कि हम दूसरों से वैसा ही पवित्र व्यवहार करें जैसा दूसरों से हम अपने प्रति चाहते हैं। हम चाहते हैं कि कोई हम से छल-कपट नहीं करे तो हमें भी किसी से छल कपट नहीं करना चाहिये।

जो प्रातःकाल जल्दी उठकर प्रभु का भजन करता है; पूज्य जनों का आदर करता है; संतों की, ब्राह्मणों की, गरीबों की व गौमाता की सेवा करता है। तथा ईमानदारी से अपना काम करता है; वह पुण्यात्मा है। जो सब काम अपनी इन्द्रियों की तृप्ती के लिये ही करता है; वह पापात्मा है

आधे दोहे में कहा; कोटि ग्रंथ का सार।
परपीड़ा सो पाप है; धर्म ही पर उपकार ॥

शिष्य ने कहा—गुरुजी ! आप कहते हैं कि मरने के बाद पुण्यात्मा स्वर्ग में जाता है और पापात्मा नर्क में जाता है किन्तु दोनों का जन्म तो बारम्बार होता है अतः ये बताइये कि **स्वर्ग से आने वाले को व नर्क से आने वाले की पहचान क्या है ?**

गुरु जी ने कहा—पुत्र ! १. जिसका दान करने का स्वभाव है। २. जो सबसे मीठा बोलता है। ३. जो सदा देव पूजन याने भजन करता है। ४. जो सदा सज्जनों का ही संग करता है। वह प्राणी स्वर्ग से आया हुवा है।

इसके विपरीत जो अत्यन्त ही क्रोधी स्वभाव वाला है। जो सबसे कड़ुवा बोलता है। जो बहुत ही गरीब है। जो अपने परिवार वालों से ही बैर भाव रखता है। जो शराबी, जुवारी, माँसाहारी, कामी, क्रोधी व नीचवृत्ति वाले दुर्जनों का संग करता है। वह नर्क से आया हुआ प्राणी है।

—: स्वर्ग से आये हुए का स्वभाव :—

स्वर्गस्थानामिह जीवलोके; चत्वारि चिन्हानि वसन्ति देहे।
दानप्रसँगो, मधुरा च वाणी; देवार्चनम् ब्राह्मण तर्पणम् च ।।

—: नर्क से आये हुए का स्वभाव :—

अत्यन्त कोपः कटुका च वाणी; दरिद्रता स्वजनेषु वैरम्।
नीच प्रसंग, कुलहीन सेवा; चिन्हानि ऐते नरकस्थितानाम् ।।

卐 मानसिक रोगों का वर्णन 卐

गुरु जी ने कहा--हे शिष्य ! शरीर के रोगों की तरह मन के रोग भी होते हैं जिनके कारण सब लोग दुःखी रहते हैं। तुम्हारे कल्याण के लिये मैं तुमको बतलाता हूं कि **मानस रोग क्या हैं ?**

सब रोगों की जड़ मोह है जिससे अनेक रोग उत्पन्न होते हैं जैसे—**काम**—वायु का रोग है। **क्रोध**—पित्त का रोग है जो छाती जलाता है। **लोभ**—कफ है। ये तीनों भाई (वात-पित्त-कफ) प्रीति कर लें तो दुःखदायक सन्निपात राग हो जाता है। कठिनता से पूरे होने वाले जो विषयों के मनोरथ हैं वे सब कष्टदायक रोग हैं।

ममता दाद है। **ईर्ष्या** खुजलो है। **हर्ष-शोक** गले के रोग हैं। दूसरे को सुखो देखकर जो **जलन** होतो है वह टी० बी० का रोग है। **दुष्टता** और मन की कुटिलता ही कोढ़ है। **अहंकार** अत्यन्त दुःख देने वाला गठिया रोग है। **दम्भ, कपट, मद** और **मान** नसों के रोग हैं। **तृष्णा** जलोदर रोग है। **पुत्र. धन** और **मान** की इच्छायें तिजारी रोग है। **मत्सर** और **अविवेक** दो प्रकार के ज्वर हैं।

इस प्रकार अनेकों मानसिक रोग हैं। धर्म, नियम, सदाचार, तप, ज्ञान, यज्ञ, जप, दान आदि अनेक औषधियाँ हैं फिर भी ये रोग जड़ से नहीं जाते। जगत के सभी जीव इनसे रोगी होकर हर्ष, शोक, भय, प्रीति, और वियोग के दुःख से दुःखी हो रहे हैं।

सद्गुरुरूपी वैद्य के वचन में विश्वास हो। विषयों की आशा का त्याग रूपी परहेज करे तथा भक्ति रूपी दवा ले। भगवत् कृपा होने पर ऐसा संयोग प्राप्त हो तभी सब रोग मिटते हैं।

शिष्य ने कहा—गुरुजी ! मनुष्य अचानक मर जाता है। यदि उसे पहले से ही मृत्यु का ज्ञान हो जावे तो वह सावधानी पूर्वक शुभ कर्म कर सकता है। हमारे शास्त्रों में मृत्यु का ज्ञान करने वाली बातें हो तो आप मुझे बताने की कृपा करें।

गुरुजी ने कहा—मार्कण्डेयपुराण में ऐसी बातें लिखी है जिनका ध्यान रखने से मनुष्य अपनी मृत्यु के बारे में पहले से ही जान सकता है। मैं तुझे वे बातें बतलाता हूं—

जो मनुष्य आकाशगंगा, ध्रुवतारा, शुक्रतारा, चन्द्रमा की छाया और अरुन्धती को नहीं देख पाता,—वह एक वर्ष के बाद जीवित नहीं रहता। जो सूर्यमण्डल को किरणों से रहित व अग्नि को किरणमालाओं से मण्डित देखता है, वह मनुष्य ग्यारह महिने से अधिक नहीं जीता। जो स्वप्न में वमन, मूत्र और विष्ठा के अन्दर, सोने व चांदी का प्रत्यक्ष दर्शन करता है, उसकी आयु इस महिने तक की है।

जो स्वप्न में प्रेत, पिशाच, गन्धर्व नगर व स्वर्ण के वृक्ष देखता है; उसकी आयु नौ महिने बाकी है। जो अचानक मोटे से दुबला व दुबले से मोटा हो जावे व स्वभाव बदल जावे; उसका जीवन आठ महिने तक ही रहता है। धूल या कीचड़ में पैर रखने पर जिसकी एड़ी व अंगुलियाँ नहीं दिखाई दे वह सात महिने तक जीवित रहता है। गीध, कौआ, व उल्लू सिर पर बैठ जाय तो आयु छः मास समझनी चाहिये।

कौआ आकर चौंच मारे या अपनी छाया और तरह की दिखाई दे तो आयु पांच महिने। बिना बादल के दक्षिण दिशा में बिजली चमकती दिखाई दे तो आयु चार महिने तथा रात को इन्द्रधनुष दिखाई दे तो आयु तीन महिने बाकी है; ऐसा समझना चाहिये। घी, तेल व दर्पण में अपना सिर न दीखे तो आयु एक महिना ही जानो।

जिसके सिर से बकरे अथवा मुर्दे की गंध आती हो, उसका जीवन पन्द्रह दिन का ही समझो। स्नान करते ही जिसके छाती और पैर सूख जाएं तथा जल पीने पर भी कंठ सूखे, वह दस दिन तक ही जीवित रहता है।

जल के स्पर्श से भी जिसके शरीर में रोमांच न हो, जो स्वप्न में भालू, ऊँट, गदहे, और बन्दर की सवारी करे व गीत गाता हुआ दक्षिण दिशा में जाय, उसकी मृत्यु पास खड़ी है। स्वप्न में जिसे लाल व काले कपड़े पहने कोई स्त्री दक्षिण दिशा में ले जाये, वह भी जीवित नहीं रहता।

स्वप्न में नंगा व मूंड-मुडाये कोई पुरुष हंसता व उछलता-कूदता दिखाई दे तो समझो मौत आ गई। जो स्वप्न में अपने को कीचड़ के समुद्र में डूबा हुआ देखे, वह तत्काल मर जाता है। जो स्वप्न में बिना पानी की नदी, केश, अगारे, भस्म, काले-सर्प, काले रंग का हाथ में हथियार लिये पुरुष, दीखे वह भी जीवित नहीं बचता।

सूर्योदय के समय जिसको अपने सामने गीदड़ी रोती दिखाई दे। भोजन कर लेने पर भी जिसे का भूख कष्ट होता हो। जो दातों से दाँत घिसता रहे। जिसे दीपक को गन्ध का अनुभव न हो। जिसे दूसरे के नेत्र में अपनी परछाई दिखाई न दे। जिसे दिन में ही तारे दिखाई दे। जिसकी नाक टेड़ी व कान नीचे हो जाये। जिसके बाये नेत्र से सदा पानी गिरे, उसकी आयु समाप्त जानो।

मुंह लाल और जीभ काली जान पड़े। दोनों कान बन्द करने पर अपनी आवाज सुनाई न दे। नेत्रों से किसी को नहीं पहचाने। मुंह गर्म और पेट ठंडा हो जावे। सफेद कपड़े भी लाल व काले दिखाई दे। उसके जीवन का वही अन्त है।

गुरुजी ने कहा—हे पुत्र ! **ये बात सदा याद रखना कि—ममता ही दुःख का कारण है ।** मनुष्य के हृदय में अज्ञान रूपी महान वृक्ष खड़ा है । वह अहंता रूपी अंकुर से उत्पन्न हुआ है । ममता ही उसका तना है । गृह और क्षेत्र उसकी शाखायें हैं । स्त्री और पुत्र आदि पल्लव हैं । धन धान्य बड़े पत्ते हैं । यह वृक्ष अनादि काल से बढ़ता आ रहा है । पुण्य और पाप उसके आदि पुष्प हैं । सुख और दुःख महान फल हैं । यह मोक्ष के मार्ग को रोक कर खड़ा है । **अज्ञानियों का संग ही इस वृक्ष को सिंचाई का काम देता है ।** सकाम कर्म करने की प्रबल इच्छा ही इस वृक्ष पर भंवरों की तरह मंडराती रहती है । जो लोग संसार-यात्रा से थककर इस वृक्ष का आश्रय लेते हैं । वे भ्रम-पूर्ण ज्ञान और मिथ्या सुख के वशीभूत हो जाते हैं । ऐसे लोगों को मोक्ष कैसे मिल सकता है ।

जो सत्संग रूपी पत्थर पर घिसकर तेज किये हुए विवेक रूपी कुल्हाड़े से, ममतारूपी वृक्ष को काट डालते हैं वे ही मोक्ष मार्ग से जाते हैं और शीतल ब्रह्मबन में पहुँचकर परमानन्द को प्राप्त होते हैं ।

शिष्य ने कहा—भगवन् ! आपकी कृपा से मुझे ऐसा उत्तम ज्ञान प्राप्त हुआ जो जड़ और चेतन का विवेक कराने वाला है । ज्ञान की प्राप्ती से जो अज्ञान का वियोग होता है; वही मुक्ति है । ज्ञान वैराग्य जनक दुःख से होता है । ममता के कारण स्त्री, पुत्र, धन आदि में चित की आसक्ति हो जाती है; यही दुःख का कारण है । मनुष्य को गृहस्थ में अनासक्ति पूर्वक रहना चाहिये । यही मैं समझा हूं । आपके चरणों में मेरा कोटिशः प्रणाम है ।

सूची-पत्र

विवेक–महिमा

भाग्योदयेन बहुजन्म समार्जितेन;
सत्संगमेव लभते पुरुषो यदा वैः
अज्ञान हेतु कृत मोह मदान्धकार;
नाशम् विधाय हितदोदयते विवेकः ॥

अर्थ :—बहुत जन्मों के पुण्यों के फलस्वरूप भाग्योदय होने पर ही सत्संग की प्राप्ति होती है। सत्संग करने से विवेक की जागृति होती है और विवेकरूपी प्रकाश के उदय होने पर अज्ञान से उत्पन्न मोह रूपी अंधकार का नाश हो जाता है।

बिनु सत्संग विवेक न होई।
राम कृपा बिनु सुलभ न सोई ॥
अस विवेक जब देइ विधाता।
तब तजि दोष गुनहिं मन राता ॥

जड़ चेतन गुन दोषमय; विश्व कीन्ह करतार।
संत हंस गुन गहहिं पय; परिहरि वारि विकार ॥

सत्यम् शिवम् सुन्दरम्